ISSN : 2582-6360

विश्व दीप दिव्य संदेश

मासिक शोध पत्रिका

वर्ष 25 | अंक 11 | विक्रम संवत् 2077-78 नवम्बर 2021 | पृष्ठ 34

संरक्षक : विश्वगुरु महामण्डलेश्वर परमहंस श्री स्वामी महेश्वरानन्दपुरीजी

प्रकाशक

विश्वगुरुदीप आश्रम शोध संस्थान

(जगद्गुरुरामानन्दाचार्य राजस्थान संस्कृत विश्वविद्यालय से सम्बद्ध)

(राजस्थान संस्कृत अकादमी से सम्बद्ध)

कीर्ति नगर, श्याम नगर, सोढाला, जयपुर

Narayan

ISSN : 2582-6360

विश्व दीप दिव्य संदेश

मासिक शोध पत्रिका

वर्ष 25 | अंक 11 | विक्रम संवत् 2077-78 नवम्बर 2021 | पृष्ठ 34

परामर्शदाता
देवर्षि कलानाथ शास्त्री
पण्डित अनन्त शर्मा
डॉ. नारायणशास्त्री काङ्कर
प्रो. कैलाश चतुर्वेदी
डॉ. शीला डागा
प्रो. (डॉ.) गणेशीलाल सुथार

प्रधान सम्पादक
सोहन लाल गर्ग

सम्पादक
डॉ. सुरेन्द्र कुमार शर्मा

सह-सम्पादक
डॉ. रामदेव साहू
डॉ. रघुवीर प्रसाद शर्मा
तिबोर कोकेनी
श्रीमती अन्या वुकादिन

सहयोग
नवीन जोशी

- प्रमुख संरक्षक -
परम महासिद्ध अवतार श्री अलखपुरी जी
परम योगेश्वर स्वामी श्री देवपुरी जी

- प्रेरणास्त्रोत -
भगवान् श्री दीपनारायण महाप्रभुजी

- संस्थापक -
परमहंस स्वामी श्री माधवानन्द जी

- संरक्षक -
विश्वगुरु महामण्डलेश्वर परमहंस
श्री स्वामी महेश्वरानन्दपुरीजी

- प्रबन्ध सम्पादक -
महामण्डलेश्वर स्वामी ज्ञानेश्वर पुरी

प्रकाशक

विश्वगुरुदीप आश्रम शोध संस्थान
(जगद्गुरु रामानन्दाचार्य संस्कृत विश्वविद्यालय से सम्बद्ध)
कीर्ति नगर, श्याम नगर, सोढाला, जयपुर

Website : vgda.in | **Youtube :** www.youtube.com/c/vishwagurudeepashram | **E-mail :** jaipur@yogaindailylife.org

अनुक्रमणिका

1.	सम्पादकीय		3
2.	क्या राम ने सीता परित्याग किया था ?	देवर्षि कलानाथ शास्त्री	4
3.	'वैद्यविनोदसंहिता' समीक्षा	वैद्य गोपीनाथ पारीक 'गोपेश'	12
4.	पाण्डुलिपि संरक्षण के विविध उपागम	नवीन जोशी	20
5.	पृथ्वी एवं सूर्य में पौर्वापर्यविषयक सिद्धान्त	डॉ. रामदेव साहू	27
6.	राष्ट्रोपनिषत्-प्रस्तावना-शतकम्	डॉ. नारायणशास्त्री काङ्कर	31

विश्वदीप दिव्य संदेश पत्रिका का वार्षिक सदस्यता शुल्क **800/- रूपये**

खाता संख्या : 5013053111

IFS Code : KKBK0003541

मुद्रण : **कन्ट्रोल पी**, जयपुर - मो. : 9549666600

सम्पादकीय

विश्वगुरुदीप आश्रम शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित मासिक शोधपत्रिका का वर्ष 2021 का एकादश अंक आपके करकमलों में अर्पित करते हुए अत्यधिक हर्ष का अनुभव हो रहा है। भारतीय धर्म-संस्कृति के शोधलेखों का यह संग्रह विद्वानों द्वारा सराहा जा रहा है। विद्वानों द्वारा नियमित भेजे जा रहे शोधलेख हमारा मनोबल बढ़ा रहे हैं व पत्रिका के महत्त्व को भी आलोकित कर रहे हैं। पूर्व अंकों में सभी उच्चस्तरीय विद्वानों के लेख प्रकाशित हुए हैं।

इस अंक में सर्वप्रथम देवर्षि कलानाथ शास्त्री द्वारा लिखित ''क्या राम ने सीता परित्याग किया था'' सांस्कृतिक पर्यालोचन की दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण रचना है। तत्पश्चात् वैद्य गोपीनाथ पारीक 'गोपेश' द्वारा लिखित 'वैद्यविनोदसंहिता समीक्षा' लेख आयुर्वेद के अपरिज्ञात ग्रन्थ के विषय में जानकारी प्रदान करता है। लेखक ने इके महत्त्व एवं इसमें प्रतिपादित विशिष्ट लोकोपकारक योगों का भी उल्लेख किया है। तृतीय लेख नवीन जोशी द्वारा लिखित 'पाण्डुलिपि संरक्षण के विविध उपागम' पाण्डुलिपि विज्ञान के क्षेत्र में पर्याप्त महत्त्वपूर्ण तथ्यों का प्रतिपादन करता है। इसमें पाण्डुलिपियों की संरक्षण की विधियों के संदर्भ में क्रियात्मक जानकारी प्रदान की गयी है। डॉ. रामदेव साहू द्वारा लिखित 'पृथ्वी एवं सूर्य में पौर्वापर्यविषयक सिद्धान्त' लेख में पृथ्वी एवं सूर्य के सृष्टिक्रम के विषय में महर्षि याज्ञवल्क्य, बृहस्पति, महर्षि भरद्वाज एवं विश्वकर्मा के सिद्धान्तों द्वारा वेद विज्ञान के रहस्यों को प्रस्तुत किया गया है अन्त में डॉ. नारायणशास्त्री काङ्कर के 'राष्ट्रोपनिषत् प्रस्तावना शतकम्' के कतिपय पद्य प्रकाशित किये गये हैं, जो गुरुशिष्यपरम्परा के गौरव को प्रदर्शित करने के साथ साथ आत्मचिन्तन की प्रेरणा प्रदान करने वाले हैं।

आशा है, सुधी पाठक इन्हें रुचिपूर्वक हृदयंगम करने में अपना उत्साह पूर्ववत् बनाये रखेंगे।

शुभकामनाओं सहित....

सम्पादक

डॉ. सुरेन्द्र कुमार शर्मा

क्या राम ने सीता परित्याग किया था ?

देवर्षि कलानाथ शास्त्री

(राष्ट्रपति सम्मानित), प्रधान सम्पादक ''भारती''संस्कृत मासिक
पीठाचार्य, भाषामीमांसा एवं शास्त्रशोध पीठ - विश्वगुरुदीप आश्रम शोध संस्थान, जयपुर
पूर्व अध्यक्ष - राजस्थान संस्कृत अकादमी
आधुनिक संस्कृत पीठ - जगद्गुरु रामानन्दाचार्य राजस्थान संस्कृत विश्वविद्यालय
पूर्व निदेशक - संस्कृत शिक्षा एवं भाषा विभाग, राजस्थान सरकार
सदस्य - संस्कृत आयोग, भारत सरकार

रामकथा इस देश के जनमानस की जीवनी शक्ति है। उसी ने राम को मर्यादापुरुषोत्तम और रामराज्य को आदर्श राज्य की छवि दी है। इस कथा में दो एक ही ऐसी गुत्थियाँ हैं, जो इस छवि पर प्रश्नचिन्ह लगाती है। इनमें से प्रमुख है राम के द्वारा गर्भवती सीता का निर्वासन। कुछ सदियों से यह कथा प्रचलित है कि अच्छा भला रामराज्य चल रहा था, किन्तु जब राम ने यह सुना कि कोई धोबी रावण के यहाँ कुछ अर्से तक रह आने का आधार लेकर (अपनी पत्नी को डाँटते हुए) सीता के चरित्र पर आक्षेप कर रहा था, तो उन्होंने सीता से किसी भी प्रकार का स्पष्टीकरण लिये बिना एकतरफा फैसला करके उसे गंगातीर के आश्रमों में अकेला छोड़ दिया। वहाँ अनाथ और असहाय अवस्था में रोती हुई सीता को वाल्मीकि ने सहारा दिया और वहीं लव-कुश का जन्म हुआ आदि। संस्कृत ग्रंथों से लेकर लोककथाओं तक यह वृत्तांत फैला हुआ है, किन्तु राम और सीता के निर्मल चरित्रों के बीच यह अटपटी बात बहुतों के गले नहीं उतरती कि राम जैसा न्यायप्रिय सम्राट् केवल इस तरह की अफवाह को लोकसम्मत अपराध मान कर बिना किसी जाँच के ऐसी हालत में एकतरफा फैसला कर जब सीता जैसी आदर्श सती माँ बनने वाली थी, खासकर तब जब उसकी अग्निपरीक्षा एक बार ली जा चुकी थी। राम की छवि पर केवल एक दो अन्य प्रश्नचिन्ह और रहते हैं, वे हैं छिपकर बाली को मारना तथा तपस्या कर रहे शंबूक का केवल इसलिए वध कर देना कि वह शूद्र होकर भी तपस्या कर रहा था, किन्तु सीता परित्याग वाली बात तो अनेक वर्गों ने आक्रोशपूर्वक समय-समय पर उठायी है।

यह घटना तो बहत पुरानी नहीं है कि दूरदर्शन पर जब रामानन्द सागर की रामायण का प्रसारण हो रहा था, जिसका प्रमुख आधार तुलसी का रामचरित-मानस था, उसके धारावाहिक राम के राज्याभिषेक के साथ समाप्त हो

गये, किन्तु लव-कुश वाली कथा को वाल्मीकि के आधार पर उन्होंने उत्तररामायाण के नाम से फिर शुरू करना चाहा तो इस पर अनेक आपत्तियाँ उठीं। कुछ प्रतिष्ठित नागरिकों की प्रेरणा से जिनमें हिंदी के प्रसिद्ध साहित्यकार रामकुमार वर्मा शामिल थे, जस्टिस गोपीनाथ ने प्रयाग उच्च न्यायालय में याचिका भी दायर की और सीता निर्वासन वाली कथा न दिखाये जाने के पक्ष में निर्णय भी हुआ, किन्तु उच्चतम न्यायालय में अपील के बाद इन धारावाहिकों को अनुमति मिल गयी। उस पर स्वयं रामानन्द सागर ने कुछ स्पष्टीकरण देते हुए और यह बतलाते हुए कि तुलसीदास के 'मानस' में तो यह कथा नहीं है पर अन्य ग्रंथों के आधार पर हम इसे दिखा रहे हैं, यह कथा दिखायी। फिर भी उसमें विविध आपत्तियों से बचने के लिए कहानी को नया मोड दिया गया कि राम ने सीता को नहीं निकाला, बल्कि सीता ने अफवाहों को देखते हुए अयोध्या के सम्राट् की छवि को धूमिल न होने देने हेतु स्वयं राजमहल छोड़ दिया आदि। रामकथा में इस प्रकार की गलतियाँ निकालने की आवश्यकता शायद इसीलिए पड़ी, कि घटना ही ऐसी है कि बहुत से हृदयों को विचार के लिए विवश कर देती है। इस बारे में अनेक शोध हुए हैं, कि क्या सचमुच राम ने सीता का परित्याग किया था?

आज तो इस घटना को सच मानने का यह आधार है कि वाल्मीकि ने उत्तरकांड में इस घटना का वर्णन किया है किन्तु अनेक विद्वानों ने जिनमें भारतीय और विदेशी दोनों प्रकार के शोध विद्वान् सम्मिलित हैं, यह शोध किया है कि वाल्मीकि रामायण का वह अंश परवर्ती या प्रक्षिप्त है, जिसमें इस घटना का वर्णन है। जब जब विदेशी विद्वान् हमारे प्राचीन ग्रंथों में कुछ अंशों को अनुसंधान के बल पर प्रक्षिप्त करार देते हैं, तो हम में से बहुतों की प्रतिक्रिया यह होती है कि जो अंश न रुचे उसे प्रक्षिप्त करार देने में विदेशियों का स्वार्थ रहता है और उनके दो लक्ष्य ही प्रमुख रहते हैं, एक तो हमारे प्राचीन ग्रंथों को जहाँ तक बन सके अर्वाचीन सिद्ध करना, दूसरे उनमें से जब चाहें तब किसी अंश को प्रक्षिप्त बता देना। इस दृष्टि से हमें आँख मूँदकर तो यह नहीं मानना चाहिए कि अमुक अंश प्रक्षिप्त है, किन्तु यदि उसके पुष्ट प्रमाण हों और शोध दृष्टि में कोई निहित स्वार्थ नहीं दिखलाई देता हो तो उसे नकारने का भी कोई कारण नहीं है।

वाल्मीकि रामायण के उत्तरकांड का अधिकांश और बालकांड के कुछ सर्ग बाद में जोड़े गए, यह बात जर्मन विद्वान जैकोबी ने प्रमाणों सहित कही थी। अंग्रेज विद्वान् तो ब्रिटिश साम्राज्य के निहित स्वार्थों के कारण अटपटी स्थापनाएँ भी करें तो बात समझ में आती है, पर जैकोबी जैसे जर्मन विद्वान का ऐसा कोई इरादा हो नहीं सकत। फिर इसके अनेक प्रमाण भी थे कि वाल्मीकि के पाठ में समय-समय पर प्रक्षेप हुए हैं। जब प्राचीन भारतीय विद्वानों ने भी यह बात मानी तो इस शोध की सच्चाई पर विश्वास होने लगा। सीता निर्वासन की कथा प्रक्षिप्त है, यह बात तो स्वयं तुलसीदास ने भी मानी लगती है, तभी उन्होंने अपने 'मानस' में इसका कोई जिक्र नहीं किया और राम के

राज्याभिषेक के बाद राम राज्य का वर्णन करते हए बताया कि अयोध्या में सीता के लव और कुश दो राजकुमार हुए -

दुई सुत सुंदर सीता जाए, लव कुस बेद पुरानन्ह गाए ॥

यह बात तो मानी हुई है कि वाल्मीकि रामायण का आज जो पाठ मिलता है, वही मूल पाठ हो सो बात नहीं है। उसमें समय-समय पर परिवर्तन-परिवर्धन हुए हैं। आज के संस्करणों में भी उत्तर और दक्षिण भारत के पाठों में अंतर है। विद्वानों ने खोजबीन करके अनेक अंतः साक्ष्यों और बाह्य प्रमाणों से सिद्ध किया है, कि कितना पाठ कब जोड़ा गया और कौन-सा अंश मूलतः रामायण में था और कितना पुराना है। जैकोबी तथा अनेक भारतीय विद्वानों ने यह बतलाया कि बालकांड के प्रथम चार सर्ग और लगभग पूरा उत्तरकांड बाद में जोड़ा गया। इसके अनेक प्रमाण इन विद्वानों ने दिये हैं। उनमें से कुछ इस प्रकार हैं, कि प्रथम तो बालकांड और उत्तरकांड की भाषा शैली शेष पाँच कांडों से भिन्न है, पाँच कांडों की उत्कृष्ट शैली और सहजता उनमें नहीं है। पाँच कांडों में राम को महान् जननायक के रूप में ही चित्रित किया गया है, केवल बालकांड के प्रारम्भ में और उत्तरकांड में उन्हें विष्णु का अवतार बताया गया है, जिससे लगता है कि वैष्णव भक्ति का नायक राम को बनाने के लिहाज से ये अंश बाद में जोड़े गये। इसके अतिरिक्त पाँच कांडों में इन्द्र को सर्वोच्च देवता बताया गया है, केवल इन्हीं दो कांडों में विष्णु को अधिक महत्व दिया गया है और इन्द्र को उससे नीचा स्थान मिला है। पाँच कांडों में ऐसा कोई कथानक नहीं है कि वाल्मीकि राम के समकालीन थे। यह बात समझ में भी आती है। इन दो कांडों में ही ऐसा बताया गया है कि वाल्मीकि राम के समय हुए थे, उन्होंने लव-कुश का पालन किया था। अयोध्या कांड में तीन श्लोक अवश्य मिलते हैं जिनमें राम, लक्ष्मण का वाल्मीकि से मिलना वर्णित है। यह तो स्पष्ट ही है कि बालकांड के वे प्रारम्भिक अंश तो वाल्मीकि के लिखे हुए नहीं हो सकते, जिनमें यह कथा है कि भगवान वाल्मीकि ने नारद से ऐसा कहा आदि। यदि स्वयं वाल्मीकि लिखते तो या तो मैंने ऐसा कहा' आदि लिखते, यदि अपने आपको अन्य पुरुष में लिखते तो भी स्वयं को भगवान कभी न लिखते।

इस स्थापना की सबसे अधिक प्रत्यायक बात यह लगती है, कि अयोध्याकांड से युद्धकांड तक पूरी रामकथा एक सूत्र में चलती है और युद्ध कांड में समाप्त हो जाती है। ग्रंथ की समाप्ति का प्रत्यक्ष प्रमाण यह है कि युद्ध कांड के अन्त में फलश्रुति आ जाती है कि जो इस ग्रंथ को पढ़ेगा उसका कल्याण होगा आदि। ऐसी फलश्रुति केवल ग्रंथ के अन्त में आती है, बीच में कहीं नहीं। युद्धकांड के अलावा किसी भी कांड में ऐसी फलश्रुति नहीं है। इससे यह सिद्ध होता है कि मूलतः रामायण युद्धकांड में समाप्त हो गयी थी। उसे बाद में फिर इधर उधर की कथाओं को जोड़ कर बढ़ाया गया और उत्तर कांड के अन्त में फिर फलश्रुति लिखी गयी। ऐसे जोड़ने वालों ने जोड़ने का तो ध्यान रखा,

युद्धकांड की फलश्रुति को हटाने का ध्यान नहीं रखा। यही कारण है कि रामायण की कथा की जो अनुक्रमणिका वर्तमान रामायण में आती है वह दोहरी है। मूल रामायण में राज्याभिषेक तक की कथा है। सीता निर्वासन का जिक्र भी नहीं है। अर्थात् रामायण के कथासार का वह संस्करण ही पुराना था। दूसरी अनुक्रमणिका में फिर सारी कथाओं को गिनाया गया है और उसमें नयी बातें जोड़ी गयी हैं। कुछ विद्वानों ने सप्रमाण सिद्ध किया है, कि मूलतः जो पांच कांड थे, उनमें पहला अयोध्याकांड था। इसमें से अयोध्या के वर्णन के कुछ सर्ग बाद में बालकांड में जोड़ दिये गये।

बालकांड के सर्गों में परस्पर जो अंतर्विरोध है उससे भी लगता है कि कुछ कथा बाद में अवश्य जोड़ी गयी है। ऋष्यशृंग ऋषि (जिसे तुलसीदास ने शृंगी ऋषि कहा है) मूलतः रामायण में नहीं था, उनकी कथा बाद में जोड़ी गयी है। पुत्रेष्टि यज्ञ भी बाद में जोड़ा गया है। तभी तो सर्ग 17 तक पुत्रेष्टि यज्ञ का हवाला है और खीर खा कर रानियाँ पुत्र पैदा करेंगी ऐसी आशा व्यक्त की गई है, जबकि 18वें सर्ग में पुत्रेष्टि यज्ञ का कोई नामोनिशान नहीं है और यह कहा गया है कि दशरथ ने जो अश्वमेध यज्ञ किया था, उसके फलस्वरूप उन्हें पुत्रप्राप्ति की आशा हुई। बेचारे टीकाकार भी इन अंतर्विरोधों का कोई समाधान प्रस्तुत नहीं कर पाए।

इस प्रकार स्वयं वाल्मीकीय रामायण के अन्तःसाक्ष्यों से यह लगता है, कि कुछ अंश अवश्य बाद में जोड़ा गया था। बाद में कुछ अन्य विद्वानों ने बहिःसाक्ष्यों के आधार पर भी इस बात को प्रमाणित किया कि बालकांड और उत्तरकांड के बहुत से अंश प्रक्षिप्त हैं। सीता-निर्वासन और लव-कुश वाली कथा केवल उत्तरकांड में मिलती है, बाकी के किसी भी कांड में इस कथा का किसी प्रसंग में किसी रूप में भी कोई संदर्भ नहीं है। केवल बालकांड के प्रथम चार सर्गों में एक दो जगह कुश का संदर्भ आता है। इन विद्वानों की उपर्युक्त स्थापना के अनुसार यह सिद्ध होता है कि वाल्मीकि ने जब रामायण लिखी होगी, उस समय उसमें सीता-निर्वासन और लव-कुश के जन्म की कथा नहीं रही होगी। यह बात सारे प्राचीन वाङ्मय का मंथन कर वाल्मीकि के पाठ पर अनुशीलन करने वाले अनेक विद्वानों ने बहिःसाक्ष्यों के आधार पर भी कही है।

जयपुर के प्रसिद्ध विद्वान् स्व.डॉक्टर पुरुषोत्तम लाल भार्गव पुराणों की प्रामाणिकता को स्वीकार करते हैं और आर्य समाज तथा अनेक विदेशी विद्वानों की तरह पुराणों को कपोल कल्पना नहीं मानते। विदेशी विद्वानों में पार्टिज आदि कुछ विद्वान ही ऐसे हैं जो पुराणों को प्रामाणिक मानने के पक्षधर हैं। यह तो सभी मानते हैं कि पुराणों के पाठों में परिवर्तन परिवर्धन बाद तक होते रहे, किन्तु इसी आधार पर उनकी प्रामाणिकता नकार देना बुद्धिमानी नहीं होगी। आवश्यकता इस बात की है कि गहन अनुशीलन के बाद यह विश्लेषण किया जाय कि पुराणों के कौन से अंश वेद, उपनिषद्, जैन व बौद्ध वाङ्मय, शिलालेखों तथा अन्य अभिलेखों के साक्ष्य से प्राचीन सिद्ध होते हैं और कौन से अंश बाद में जोड़े जाने के पुष्ट प्रमाण मिलते हैं। कुछ विद्वानों ने पर्याप्त श्रम कर ऐसा विवेचन भी किया है। स्वयं

डॉक्टर भार्गव ने इस प्रकार के अध्ययन कर ग्रंथ लिखे, जिनमें से एक अंग्रेजी ग्रंथ 'रिट्रीवल आफ हिस्ट्री फ्रॉम पौराणिक मिथ्स' कुछ प्रचलित कथाओं के बाद में जोड़े जाने का प्रामाणिक विवरण प्रस्तुत करता है। इसमें भी उन्होनें बतलाया है कि कौन कौन से अंश वाल्मीकि रामायण में बाद में जोड़े गए होंगे। उन्होंने रामायण और गीता का मूलपाठ कैसा रहा होगा यह प्रक्षेपों को हटा कर बताया है तथा 'गीता एज इट वाज' और 'रामायण एज इट वाज' शीर्षक दो ग्रन्थ लिखे।

परंपरावादियों को सामान्यतः यह बात पसंद नहीं आती, कि हमारे प्राचीन श्रद्धेय ग्रंथों में प्रक्षेप की बात आसानी से कह दी जाय, क्योंकि उससे पूरे पाठ पर श्रद्धा तो कम हो ही जाती है, पर वाल्मीकि के प्राचीन टीकाकार गोविन्दराज ने जब स्वयं अपनी टीका में यह लिख दिया कि बालकांड के द्वितीय सर्ग से चतुर्थ सर्ग पर्यन्त कथा उनके किसी शिष्य ने बाद में जोड़ी होगी (1/5/1) तब ऐसी बातों के न मानने का कोई कारण नहीं दिखता। सीता-निर्वासन या लव-कुश का कोई संदर्भ अयोध्या से ले कर युद्धकांड तक न आना तो यह सिद्ध करता ही है, कि सीता निर्वासन की कथा बाद में जोड़ी गयी हो सकती है, इसके अतिरिक्त ब्रह्मांड, वायु, कूर्म, गरुड और विष्णु पुराणों में रामकथा अवश्य आती है, किन्तु उसमें सीता के परित्याग का और उसके बाद लव-कुश के जन्म का कहीं कोई संदेश भी नहीं है। महाभारत में भी रामकथा विस्तार से वर्णित है पर उसमें भी इन दोनों प्रसंगों का कोई जिक्र नहीं है। ये सारे पुराण बहुत प्राचीन हैं, यह बात निर्विवाद है। यदि राम ने सीता का त्याग किया होता, तो इन पुराणों में उसका कोई संकेत तो होता। कुछ पुराणों में रामकथा है किन्तु वाल्मीकि का नाम नहीं है। इस आधार पर तथा उनके अन्य प्रमाणों से यह माना जाता है, कि वाल्मीकि की रामायण से पूर्व इन पुराणों का निर्माण हुआ होगा अन्यथा इनमें वाल्मीकि का नाम होता। अन्य अनेक पुराणों में वाल्मीकि का तथा उनके द्वारा रामायण रचे जाने का विवरण मिलता है। यह माना जाता है कि

वे वाल्मीकि से परवर्ती हैं। यह भी विद्वानों की मान्यता है, कि महाभारत का मूल पाठ वाल्मीकि से पुराना था। यह तो निर्विवाद सिद्ध हो गया है, कि महाभारत में भी परिवर्धन होते रहे, मूलतः उसका नाम 'जय' था, फिर 'भारत' हुआ फिर 'महाभारत'। आज जो पाठ उपलब्ध है, उसमें वाल्मीकि का नाम भी है और रामकथा भी तथापि उसमें सीता परित्याग का जिक्र नहीं है। हरिवंशपुराण में भी यह प्रसंग नहीं है। इससे भी यह अनुमान होता है, कि उस समय तक जो वाल्मीकि रामायण उपलब्ध थी, उसमें सीता त्याग वाला अंश नहीं था।

तब यह सीता-परित्याग की कथा कहाँ से आयी और वाल्मीकि रामायण में कैसे जुड़ गई? इस पर भी विद्वानों ने विचार-मंथन किया है। इसके लिए यह देखा जाना चाहिए कि रामकथा में सीता त्याग वाली बात किन किन ग्रंथों में और कौन कौनसे पुराणों में मिलती है? वे कब लिखे गये? इससे यह अंदाजा हो सकता है कि किस काल में यह

प्रक्षेप हुआ होगा। सीता निर्वासन कभी नहीं हुआ था और रामायण में वाल्मीकि ने ऐसी कथा नहीं लिखी यह बात बड़े जोर शोर से चित्रकूट के रामानंद-पीठ के अधीश्वर श्री रामभद्राचार्य जी ने सिद्ध की है।

1990 मे 'सीता निर्वासन नहीं' शीर्षक से एक पुस्तक भी प्रकाशित कर दी है, जिसमें चार निश्वासों में यह स्थापित किया है, कि वाल्मीकि में यह कथा प्रक्षिप्त है। उनके अनुसार इस प्रकार का प्रक्षेप गुणाढ्य ने किया था, जिसने प्राकृत की अनेक कहानियों का संग्रह 'बडढ्कहा' नाम से पैशाची प्राकृत में लिखा था, जो बृहत् कथा नाम से प्रसिद्ध है। उसका मूल पाठ तो नहीं मिलता, किन्तु उसके आधार पर लिखी क्षेमेन्द्र कृत बृहत्कथामंजरी और सोमदेव का कथा-सरित्सागर आज भी उपलब्ध है। यह गुणाढ्य ईसा की पहली सदी के आस पास हुआ माना जाता है। उसने राम के चरित्र में जान बूझ कर प्रश्नचिन्ह लगाने हेतु यह कथा जोड़ दी, ऐसा रामभद्राचार्य जी का मानना है। डाक्टर भार्गव आदि विद्वान् मानते हैं, कि शायद सबसे पहले कालिदास ने अपने रघुवंश में यह कथा लिखी और उसके बाद सब जगह फैल गयी। कालिदास के पूर्ववर्ती भास ने रामकथा पर अनेक नाटक लिखे, पर किसी में भी सीता निर्वासन का संकेत नहीं है। श्रीमद्भागवत मे यह प्रसंग है। जो लोग श्रीमद्भागवत को कालिदास से पूर्व का मानते है, उनके अनुसार सर्वप्रथम श्रीमद्भागवत में यह कथा आयी।

रामकथा से सम्बन्धित काव्यों में तो कालिदास ने सर्वप्रथम अपनी मौलिक प्रतिभा का उपयोग करते हुए रघुवंश महाकाव्य में काव्यात्मक शैली में यह वर्णन किया है, कि किस प्रकार लोकापवाद के आधार पर राम ने बिना कुछ पूछे या कहे भोली भाली सीता को लक्ष्मण के हाथों गंगातट पर छुड़वा दिया। वहाँ सीता ने लक्ष्मण के मुँह से पहली बार यह रहस्य जान कर राम को जो संदेश कहलवाया है, वह इतना मर्मस्पर्शी है कि आज भी पाठकों के दिल को दहला देता है। उसमें सीता ने जिस प्रकार राम को उलाहना दिया है, किन्तु जरा भी उन पर आरोप नहीं लगाया, यह भारतीय नारी के चरम उत्कर्ष का प्रमाण है, किन्तु उसके संदेश में कालिदास का विद्रोह भी स्पष्ट झलकता है। उससे लगता है कि सीता परित्याग का औचित्य कालिदास के भी गले नहीं उतरा था। 'लक्ष्मण, मेरी ओर से राजा राम से पूछना कि एक बार अग्निपरीक्षा में तप कर शुद्ध हो जाने के बाद भी केवल किसी अफवाह के आधार पर एकतरफा मुझे यों छोड़ देना कहाँ का न्याय है? क्या रघुकुल का और आपके शील और विवेक का भी यही न्याय है? जो भी हो, मैं तो मानती हूँ कि इतने विवेकी और कल्याण बुद्धि वाले होते हुए आप मुझ पर यह अत्याचार करें यह तो संभव नहीं। यह तो मेरे ही पूर्व जन्म के पापों का विपाक है। खैर, अब तो यही करूँगी कि तुम्हारें वंशधर को जन्म देने के बाद फिर कठिन तपस्या करूँगी यह फल प्राप्त करने हेतु, कि अगले जन्म में भी मैं तुम्हें ही पति के रूप में पाऊँ, किन्तु तब ऐसे वियोगों के हादसे न हों।' यह सारांश है उस संदेश का।

बाद में इस कथा को भवभूति ने उत्तररामचरित नामक नाटक में निबद्ध किया। कालिदास और भवभूति दोनों ने असहाय सीता का वाल्मीकि आश्रम में रहना और वाल्मीकि की देखरेख में लवकुश का जन्म, वाल्मीकि द्वारा उन्हें धनुर्विद्या में निष्णात बनाना आदि का विस्तृत वर्णन किया है और अन्त में यह बताया है, कि किस प्रकार सारी जनता ने सीता की पवित्रता का लोहा माना। वाल्मीकि के अद्यतन पाठ में यह और मिलता है कि यह सब कुछ हो जाने पर भी बाद में सीता ने खिन्न होकर उनकी दुरवस्था का राम की राजसभा में उद्घोष करते हुए पृथ्वी माता से अपनी गोद में लेने की प्रार्थना की और सबके देखते-देखते सीता पृथ्वी में समा गयी। इस कथा के संकेत पुराणों में से केवल तीन में ही मिलते है, पद्म पुराण, अग्नि पुराण, गौतमी माहात्म्य और श्रीमद्भागवत में। इन तीनों पुराणों को बहुत प्राचीन नहीं माना जाता है। वे वाल्मीकि रामायण से तो निश्चित ही परवर्ती हैं ऐसा विद्वानों का मानना है। डाक्टर भार्गव के अनुसार तो उनके वर्तमान पाठ कालिदास से भी बाद के है।

इससे यह सिद्ध होता है कि मूलतः रामकथा में सीता का परित्याग नहीं था। इसीलिए प्राचीन पुराणों की रामकथा में इसका विवरण नहीं मिलता। जैन और बौद्ध कथाओं में जिनसे गुणाढ्य ने कथाओं का संकलन किया, ऐसी बात जोड़ दी गयी होगी। डाक्टर रामकुमार वर्मा ने तो एक पूरा काव्य उत्तरायण नाम से लिखा है जो प्रकाशित है। उसमें उन्होंने भी जोर देकर यह बतलाया है कि सीता त्याग की कथा वाल्मीकि में थी ही नहीं, बाद में जोड़ी गयी। भगवान बुद्ध ने अपनी पत्नी यशोधरा और पुत्र राहुल का त्याग कर प्रव्रज्या ले ली थी। मैथिलीशरण गुप्त ने इस मार्मिक घटना और यशोधरा की असहायता पर जो काव्य लिखा है, वह प्रसिद्ध है। यशोधरा की यह उक्ति भी प्रसिद्ध है 'सखि वे मुझसे कह कर जाते'। बुद्ध के निर्मल चरित्र पर पत्नी का वह प्रश्नचिन्ह जिस प्रकार देश के जनमानस को कचोटता था, उस प्रकार की कोई कचोट राम चरित्र पर लगा दी जाय, इस दृष्टि से यह प्रक्षेप किया गया होगा ऐसी मान्यता अनेक विद्वानों की है।

स्व. रामकुमार वर्मा तो सब जगह यही कहते थे, कि रामकथा के इस कलंक को धोना पूरे देश का पावन कर्तव्य है। तुलसीदास ने तभी तो सीता के परित्याग की कथा को 'मानस' में स्थान नहीं दिया। तुलसी कोई शोध विद्वान् तो थे नहीं, जो प्राचीन पाठों का अनुशीलन कर इस कथा को प्रक्षिप्त बतलाते पर उनका हृदय यह कभी नहीं मानता था, कि राम ने सीता जैसी सती का कभी त्याग किया हो। इसलिए उनकी रामकथा में इसका कोई संकेत नहीं है। यही नहीं दक्षिण की कंब रामायण, रंग रामायण, रामनाथ रामायण, एकनाथ कृत भावार्थ रामायण और उपेन्द्र भंज कृत वैदेही सुविलास आदि ग्रन्थों में सीता वनवास की कोई चर्चा नहीं है।

ब्रह्माण्ड पुराण तथा वायु, कूर्म, गरुड़ और विष्णु पुराण प्राचीन भी माने जाते हैं और प्रामाणिक भी। इनमें राम की कथा तो वर्णित है, पर सीता के वनवास का संदर्भ न होना यह प्रमाणित करता है कि वाल्मीकि रामायण में भी यह बात बाद में जोड़ी गई होगी। इन पुराणों में राम को विष्णु का स्वरूप नहीं बताया गया है। इसलिए यह माना जाता है कि वैष्णव भक्ति आन्दोलन से पूर्व का इनका पाठ है। वैष्णव भक्ति आन्दोलन के दौरान अनेक पुराणों में राम को विष्णु का रूप बताया जाने लगा था। वाल्मीकि के पाँच कांडों में भी राम केवल महामानव हैं, किन्तु बालकांड में स्वयं विष्णु आकर कहते हैं, कि मैं राम के रूप में दशरथ के घर अवतार लूँगा। इस कारण भी बालकांड को परवर्ती माना जाता है। विभिन्न विद्वानों ने वाल्मीकीय रामायण में जो जो अंश परवर्ती माने हैं, सीता निर्वासन की घटना का संदर्भ केवल उन्हीं में है, अन्यत्र नहीं।

युद्धकांड के एक प्रसंग से सीता-निर्वासन के इस कथानक की वैसे भी संगति नहीं बैठती। राम अग्निपरीक्षा के बाद सीता को पवित्र मानने की घोषणा इन शब्दों में करते हैं -

अनन्या हि मया सीता भास्करस्य यथा प्रभा। विशुद्धा त्रिषु लोकेषु मैथिली जनकात्मजा। न विहातुं मया शक्या कीर्तिरात्मवता यथा॥

(युद्धकांड 118/18-19) इनमें वे स्पष्ट कहते हैं कि अब मैं सीता को कभी नहीं छोडूँगा, जिस प्रकार सूर्य के साथ प्रभा है और यशस्वी के साथ कीर्ति, उसी प्रकार सीता मेरे साथ रहेगी। राम का वचन पत्थर की लीक होता था, यह भी सुप्रसिद्ध है। 'रामो द्विर्नाभिभाषते' यह घंटाघोष भी प्रसिद्ध है। युद्धकांड में यह घोषणा करके एक दो सर्गो के बाद राम सीता को अफवाहों के आधार पर ही छोड़ दें, यह क्या उनकी इस घोषणा से संगत होगा? इस प्रकार के वाल्मीकीय रामायण के अंतःसाक्ष्यों से भी सीता-निर्वासन की कथा प्रक्षिप्त सिद्ध होती है। राम के द्वारा तपस्या कर रहे शूद्र ऋषि शंबूक को मारने की घटना भी केवल उत्तरकांड में है। इनको उपर्युक्त आधारों पर प्रक्षिप्त मान लेने से राम के चरित्र के दो कलंक अपने आप ही धुल जाते है, यह बात अवश्य बहुत से रामभक्तों के मन को राहत देगी। यद्यपि सीता-निर्वासन की कथा की भावनात्मक कसक का कवियों के लिए जो काव्यात्मक महत्व है, उसका आधार हम खो देंगे, किन्तु ऊपर के सारे विवेचन के आधार पर इस प्रसंग को लेकर विद्वानों में और जनता में सही चित्र स्पष्ट हो सके इस दृष्टि से ही उपर्युक्त विवरण प्रस्तुत किया गया है।

'वैद्यविनोदसंहिता' समीक्षा

वैद्य गोपीनाथ पारीक 'गोपेश'
अध्यक्ष – राजस्थान आयुर्वेद विज्ञान परिषद्
साहित्य सरोवर संस्था

जयपुर के बसने से पहले इस ढूंढाड़ प्रदेश की राजधानी आमेर थी। संवत् १६७८ में आमेर की राजगद्दी पर मिर्जा राजा जयसिंह आसीन हुए। जयपुर को बसाने वाले सवाई जयसिंह थे। ये आमेर के सिंहासन पर बैठने वाले उक्त जयसिंह के प्रपौत्र थे। अत: मिर्जा राजा जयसिंह को प्रथम तथा सवाई जयसिंह को द्वितीय कहा जाता है। प्रथम जयसिंह को 'मिर्जा राजा' का खिताब दिया गया था। औरंगजेब से छत्रपति शिवाजी को मिलाने वाले ये ही राजा थे। काव्यजगत के प्रसिद्ध कवि बिहारी इन्ही मिर्जा राजा जयसिंह के दरबारी कवि थे। श्रृंगार और शान्त रस के इनके द्वारा रचित दोहे बहुत प्रसिद्ध हैं। कहते हैं कि बिहारी के एक एक दोहे पर मिर्जा राजा एक एक अशर्फी पुरस्कार स्वरूप भेंट करते थे। राजा शिव प्रसाद (सं. १८८०-१९५२) ने अपने लिखे हुये 'भाषा का इतिहास' में भी इसका उल्लेख किया है।

इन मिर्जा राजा जयसिंह प्रथम के आश्रय में अनन्त भट्ट के पुत्र शंकर भट्ट भी रहे थे, जो आयुर्वेद के प्रसिद्ध विज्ञाता थे और एक सफल चिकित्सक भी। राजा जयसिंह के पुत्र रामसिंह की प्रेरणा से शंकर भट्ट ने 'वैद्यविनोदसंहिता' नामक आयुर्वेदीय ग्रन्थ की रचना की थी। इस अविज्ञात ग्रन्थरत्न के विषय में कुछ जानकारी देना ही इस लेख का ध्येय है। इस ग्रन्थ में ग्रन्थकार ने उल्लेख किया है, कि यह ग्रन्थ मैंने आयुर्वेद के कई ग्रन्थों से सार लेकर तैयार किया है।

यह 'वैद्यविनोदसंहिता' नामक आयुर्वेदीय ग्रन्थ सं. १९७० में खेमराज श्री कृष्णदास बम्बई से प्रकाशित हो चुका है, जिस पर श्री गदाधर त्रिपाठी ने स्थान स्थान पर अपनी टिप्पणी प्रस्तुत की है। इस ग्रन्थ में कुल सोलह उल्लास (प्रकरण) हैं और कुल १७४१ श्लोक हैं। रोगों का क्रम प्राय: माधवनिदान के अनुसार ही है। निदान चिकित्सा से पहले नाड़ीपरीक्षा, मूत्रपरीक्षा भी वर्णित है। रोग का निदान पूर्वरूप वातादि दोषानुसार रोग

लक्षण लिखने के पश्चात् औषधयोग लिखे गये हैं। औषधयोगों में अनुभूत क्वाथ, चूर्ण आदि का उल्लेख करने के पश्चात् एक-दो रसयोगों का भी वर्णन किया गया है। इससे यह सिद्ध होता है कि प्रमुख अनुभव किये गये ही कुछ योग इसमें प्रदिष्ट हैं। ग्रन्थकार व्यर्थ के विस्तार से यहाँ विमुक्त रहे हैं।

आमेर में शिलादेवी माता का मन्दिर है, जिसका निर्माण महाराजा मानसिंह प्रथम ने करवाया था। यहाँ की एक जनश्रुति है- 'सांगानेर को सांगो बाबो, जैपर को हणमान। आमेर की सिल्ला देबी ल्यायो राजा मान'। अत: ग्रन्थ के प्रारम्भ में अम्बा की स्तुति ही मालिनी छन्द से की गयी है। कवि अपने पिता को दिगन्तकीर्ति और प्रथित प्रभाव वाले कह कर स्वयं को शास्त्र एवं काव्य में प्रवीण के रूप में प्रस्तुत करता है -

अनन्तनामा हि दिगन्तकीर्ति

श्रीगौड़वंश: प्रथितप्रभाव:।

तदात्मज: शंकर नामधेय:

शास्त्रेषु काव्येषु परं प्रवीण:।।

यह उपजाति छन्द है। इस ग्रन्थ में इसी छन्द का अधिकाधिक उपयोग भलीभाँति हुआ है, जो कवि के शास्त्रज्ञान के साथ साथ काव्य से सम्बन्धित छन्दों के ज्ञान को भी प्रदर्शित करता है। जिस छन्द में एक पाद इन्द्रवज्रा छन्द का हो और शेष तीन पाद उपेन्द्रवज्रा के हों अथवा एक पाद उपेन्द्रवज्रा का हो और शेष तीन पद इन्द्रवज्रा के हों वह छन्द उपजाति छन्द होता है। दो छन्दों के मेल से बने हुये इस छन्द के द्वारा कवि यह भी सिद्ध करना चाहता है, कि अनेक ग्रन्थों के मेल से इस ग्रन्थ को तैयार किया है। ग्रन्थकर्त्ता का कथन है -

हारीतपाराशरसुश्रुतानां

संगृह्य सारं विधिवत् समासात्।

सौख्याय रोगार्दितमानवानां

विधीयते वैद्यविनोद एष।।

इन अनेक योगों में से भी जो प्रयोग अनेक बार अनुभव में ला कर, जिनसे चिकित्सा में सफलता प्राप्त की हैं, उन्हें ही यहाँ लिखा गया है-

ये ये प्रयोगा बहुशोऽनुभूता-

स्ते ते मया संल्लिखिता विमृश्य।

अपने आश्रयदाता राजा जयसिंह और उनके पुत्र प्रेरणा-प्रदाता रामसिंह का ग्रन्थ के प्रारम्भ में संक्षिप्त तथा सारगर्भित परिचय प्रस्तुत कर उनके प्रति कृतज्ञता प्रकट की गयी है-

राजाधिराजो जयसिंहवीरः

ख्यातः पृथिव्यां महनीयकीर्तिः।

प्रतीपभूपालनिवारणेन

प्रतापपुंजोज्ज्वलदग्निकल्पः।।

तदात्मजो रामसमानसारो

नाम्ना चिरायुर्नृपरामसिंहः।

रूपेण दानेन पराक्रमेण

तिरस्कृतानंगसुरद्रुमेन्द्रः।।

संस्कृत साहित्य के प्रसिद्ध आचार्य राजशेखर ने अपनी 'काव्यमीमांसा' में एक बात का उल्लेख किया है कि-'सर्वोऽपि परेभ्य एव व्युत्पद्यते' अर्थात् प्रत्येक ग्रन्थकार अपने पूर्ववर्ती ग्रन्थकार से आधार लेकर चलता है। पूर्ववर्ती ग्रन्थ उत्तरवर्ती ग्रन्थकार के प्रेरणास्रोत होते हैं। वह मधुमक्षिका वृत्ति स्वीकार कर अपने ग्रन्थ को अधिक उपयोगी बनाने का प्रयास करता है। चक्रदत्त, भैषज्यरत्नावली, योगरत्नाकर आदि इसी प्रकार के संग्रहग्रन्थ को अपनी स्वतंत्रशैली में निबन्ध किया है। इसमें स्वविवेक से कई स्थलों का सुधार करते हुए इसे यथाशक्य मौलिकता प्रदान की गयी है।

संस्कृत के मूर्धन्य कवि कालिदास ने तथा हिन्दी के मूर्धन्य कवि तुलसीदास ने भी इस पथ का कई स्थलों पर अनुसरण किया है। दोनों ने अपने पूर्ववर्ती साहित्य को निचोड़ कर अपने काव्यों को अलङ्कृत तथा समृद्ध बनाया है, किन्तु दूसरे कवि की ली गयी बात को ये दोनो महाकवि इस प्रकार प्रस्तुत करते हैं, कि उसमें चार

चाँद लग जाते हैं, नवीनता आ जाती है। बात उधार ली हुई न होकर निजी बन जाती है। ऐसा ही कुछ वैद्यविनोदसंहिता में देखने को मिलता है।

योग, योजना और युक्ति तीनों पर्यायवाची है। प्रत्येक योग की योजना करने पर युक्ति का सहारा लिया जाता है। अर्थात् युक्तिपूर्वक योग की योजना करनी चाहिये। सभी शास्त्रीय योग अपने आप में पूर्ण होते हैं, उनमें किसी प्रकार का हेर-फेर करने की आवश्यकता नहीं होती। फिर भी विज्ञ वैद्य यदि आवश्यकता समझे तो वह उन योगों में से किसी द्रव्य को निकाल सकता है और किसी अन्य द्रव्य को समाविष्ट कर सकता है।

ज्वरोपचार में 'अहिमं सलिलं सुलंघनं निलयं वातनिवर्तनोचितम्' कह कर नवज्वर में पाचन औषध की उपयोगिता प्रदर्शित करते हुये सुश्रुतसंहिता में कथित वातज्वर लक्षण के उपरान्त तस्यौषधम् में अपने अनुभूत मात्र दो क्वाथ लिखे गये हैं। चक्रदत्त में निर्दिष्ट किरातादि क्वाथ को यहाँ भूनिम्बादि कर दिया गया है। भूनिम्ब भी किरात (चिरायता) का ही नाम है, किन्तु जिस नाम से प्रथम द्रव्य का उल्लेख होता है, उसी नाम के आगे आदि लगाकर उससे औषध का नामकरण करने की परिपाटी है। उक्त किरातादि क्वाथ के सभी दस द्रव्यों को भूनिम्बादिक्वाथ में सम्मिलित करते हुये एक पुष्करमूल को सम्मिलित कर कुल ग्यारह द्रव्य कर दिये हैं। हृदय और फुफ्फुसों को बल देने वाले वातकफशामक ज्वरघ्न पुष्करमूल को सम्मिलित करना उपयुक्त समझा गया। यह है विवेकपूर्ण योजना का प्रकार। आगे पित्तज्वर-चिकित्सा में निर्दिष्ट द्राक्षादिक्काथ के सातों द्रव्य सम्मिलित किये गये हैं, इनमें कोई हेर-फेर नहीं किया गया है।

राजरोग (राजयक्ष्मा) चिकित्सा में निर्दिष्ट चरकोक्त सितोपलादि चूर्ण में भी इस ग्रन्थकार ने वासा जैसे क्षयहर द्रव्य को मिला कर इस योग को अधिक प्रभावी बनाने का प्रयास किया है -

त्वगेला पिप्पली वासा रोचना च सितोपला।

यथोत्तरं द्विगुणितं लेहयेन्मधुसर्पिषा।।

एतच्चूर्णं निहन्त्याशु क्षयरोगं सुदारुणम्।।

कुछ सामान्य प्रयोग-मुष्टियोग जो वैद्यसमाज में प्रायः प्रचलित हैं, उन्हें सरस भाषा में श्लोकबद्ध कर लिखा गया है। उनमें से कुछ उदाहरण स्वरूप ये हैं -

१. कर्मैकं भक्षयेत्प्रातरामवातार्दितो नरः।
एरण्डतैलसंयुक्तां भक्षेयद्वा हरीतकीम्।।

२. पलं तिलानामसितं प्रभाते निहन्ति मेहं बहुमूत्रतां च।।

३. सोमराजीबीजकर्षं पिबेदुष्णेन वारिणा।
भोजनं क्षीरसर्पिभ्यां सर्वकुष्ठैः प्रमुच्यते।।

४. योषिन्मांससुरावर्जी कुष्ठी कुष्ठमपोहति।।

५. अश्वत्थस्य त्वचाक्षारं पिप्पलीगुडसंयुतम्।
खादेत्कर्षप्रमाणेन जीर्णश्लेष्महरं परम्।।

६. रसांजनं क्षौद्रयुतं मूलं तण्डुलीयकम्।
तण्डुलाम्बुयुतं पानं सर्वप्रदरनाशनम्।।

७ वाजिगन्धां प्रभाते सितामधुघृतप्लुताम्।
पलप्रमाणां संगृह्य मासात्स्यात् स्थविरो युवा।।

इन प्रयोगों के अतिरिक्त बहुत से उपयोगी प्रयोग इस ग्रन्थ में संग्रहित हैं। ग्रन्थ के अन्त में औषधनिर्माण विषयक आवश्यक जानकारी भी प्रस्तुत की गयी है। पथ्य-व्यवस्था, मान-परिभाषा, द्रव्यगुण, द्रव्ययोजना आदि विषयों पर भी इसमें प्रकाश डाला गया है। ग्रन्थ की पुष्पिका में कहा गया है, कि यह सिद्धिदायिनी चिकित्सा सज्जनों के चित्त को सदा आनन्द देने वाली हो-

भट्टानन्तात्मजस्येयं शंकरस्य कृतिः सताम्।
आनन्दयतु चित्तानि चिकित्सा सिद्धिदायिनी।।

Breath techniques of Yoga in Daily Life System – ancient wisdom for the modern world

Tibor Kökény
Senior Yoga Teacher,
from Hungary, Europe

Yoga in Daily Life System embraces the techniques of ancient knowledge of yogis and rishis. The complex approach on the field of breath exercises enables the practitioners to utilize the techniques according to their needs and purposes.

The two branches of breathing are fast and deep breathing and slow and deep breathing. The former is used to quickly recharge after a major effort. The latter is for long-term conditioning, to help tolerate an increase in tissue CO_2 levels. In other words, the two techniques should be used in combination to achieve the best results. It is therefore understandable why long-term capacity expansion is not the goal during intense exercise: there you have to make the best of what you have, which is O_2 demanding. In other words, breathing long and deep during exercise is the best way to get the best results. In the same way, breathing long and deep after a training session or race, and somewhat before, is also a good idea. Slow and deep breathing increases capacity and is months of regular work to develop. This is what conditioning is all about in any sport. If an athlete is working at a high level of demand and determination, they will make the most of their resting hypoxic state by practising prolonged and deep breathing. This can be combined with interval, high-load, hypoxic (anaerobic) training.

Prolonged (slow) and deep breathing builds structure, which has a similar result to EPO: an increase in the number of VVT (red blood cells) and thus an improvement in the supply of $O_2$to the tissues. Even without this, breathing long and deep during exercise has a positive effect, but with a good capacity you will be more effective - hence the link between the two approaches.

Slow and deep breathing techniques promote autonomic nervous system changes, increasing heart rate variability (HRV) and respiratory sinus arrhythmia, while modifying central nervous system activity. EEG scans show an increase in alpha brain waves and a decrease in theta waves. Anatomically, an fMRI scan shows increased activity in cortical (prefrontal, motor and parietal cortex) and subcortical (bridge, thalamus, sub-parabrachial nucleus, periaqueductal gray matter, and hypothalamus) structures. Psychological and behavioural findings associated with these changes include: increased relaxation, feelings of pleasantness, increased alertness, and a reduction in symptoms of agitation, anxiety, depression, anger and confusion. Slow breathing techniques increase autonomic, brain and psychological flexibility. Reciprocal interactions can be discovered between parasympathetic activity (increased HRV and LF performance), central nervous system activity (increased EEG alpha and decreased theta waves) and the close relationship of these activities to the emotional control and psychological well-being of individuals. Two possible explanations for these associations are. 1. changes occur through voluntary regulation of internal bodily states (enteroception); 2. the role of mechanoceptors in the nasal bulb is linked to the effect of slow breathing in modulating the activity of the primary olfactory centre (bulbus olfactorius), which sets the activity of the entire cortical envelope.

In addition to fast and deep breathing and slow and deep breathing, there are also slow breathing, which belong to the other direction of regeneration. These bring the body to a state of relaxation and bring the parasympathetic nervous system to the fore, thus allowing energy to be stored and promoting anabolic, anabolic processes.

The concept of breathing: what works where?

Or: hypoxia-hypoxia and parasympathetic-sympathetic

Breathing with bellows (Bhastrika pranayama) - This technique not only brings a lot of oxygen into the body (hyperoxia) but also creates sympathetic nervous excitement, as we then turn inward and the extra oxygen is not dispersed by restlessness. This is a training for the body and psyche to handle the increased vitality. (It is best to have practised the 4th pranayama of reed soda with breathing pauses thoroughly beforehand.)

Soft bhastrika or fast-paced total well-breathing - A technique to aid regeneration linked to movement. It can be practised in training and in competitions and matches. Movement-associated increased O_2 demand can be managed quickly and easily. If we are consciously aware of our breathing, it can be a great support even when practising monotonous sports with cyclical movements (running, swimming, cycling, etc.), if we "max out" our breathing to full capacity.

Nadi Shodhan 4th level pranayama - Purifier and strengthener of the main spiritual channels (Sushumna and Vajra Nadi). In preparation for meditation, serious practitioners tune with this for ½ to 4 hours a day for months. The technique is known to have a capacity-enhancing effect. In sport, its effect is most comparable to high altitude exercise, as it permanently increases the number of red blood cells in the blood, yet it is not considered blood doping (see next section). Breathing techniques do not simply increase CO_2 levels (while decreasing O_2 levels), but combine the process with an inner calm and purify the internal energy system.

Ujjayi or "snoring" breathing - A technique that calms the nervous system and body, it deepens a state of calm. The subtle vibrations produced through the connective tissues not only soothe and calm the body cells but also the nerve cells. Through it we can recalibrate our state of calm after a prolonged period of stress.

	Hypoxia (low O_2)	normal O_2	hyperoxia (high O_2)
parasympathetic nervous system	ns4 - equilibrium Buteyko breathing	Ujjayi	full breathing, soft bhastrika
sympathetic nervous system		awake normal breathing	bellows breathing (bhastrika)

पाण्डुलिपि संरक्षण के विविध उपागम

नवीन जोशी
शोध सहायक
विश्वदीप आश्रम शोध संस्थान

विविध लिप्यासनों पर लिखे लेख पाण्डुलिपि के अन्तर्गत माने जाते हैं । ताडपत्र, कागज, भूर्जपत्र, वस्त्र आदि लिखने के अनेकानेक आधार हो सकते हैं। प्राचीन काल में खड़िया से लिखे जाने वाले लेखपाण्डुलिपि कहलाते थे। खड़िया अथवा पाण्डु से दीवार, पत्थर आदि पर भी लिखा जा सकता है। समय-परिवर्तन के साथ नवीन साधन ताडपत्र, भूर्जपत्र, सांचीपत्र, कागज आदि लेखन के उपयोग में आने लगे। विद्वानों ने जीवनोपयोगी प्रत्येक विषय पर जो चिन्तन, मनन अथवा अन्वेषण किया, उसे भावी पीढी तक पहुँचाने के लिए लिपिबद्ध कर दिया। उन ज्ञाताओं के अनुभव, चिंतन एवं परिश्रम को बचाना हमारा प्रथम कर्त्तव्य है। इसी विचार को दृष्टिगत रखते हुए राजाओं एवं श्रेष्ठिवर्ग ने पाण्डुलिपि लिखने वालों का सम्मान किया। पाण्डुलिपि की सुरक्षा के लिए अपने अपने राज्यों में पुस्तकालय स्थापित किये। राजस्थान के प्रत्येक रजवाडों ने लेखकों, विद्वानों एवं रचनाओं को संरक्षण एवं सुरक्षा प्रदान की। जयपुर राजा का पोथीखाना बीकानेर महाराज का अनूप पुस्तकालय इसके उदाहरण है।

पाण्डुलिपियों की सुरक्षा में स्वतन्त्रता के बाद राजस्थान सरकार का भी सराहनीय योगदान रहा है। जिसके द्वारा राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान की स्थापना का उद्देश्य प्राचीन ज्ञान-विज्ञान का संरक्षण, सवंर्धन एवं प्रोत्साहन रहा है। पाण्डुलिपियों के संरक्षण में राजस्थान संस्कृत अकादमी, श्री संजय संग्रहालय शोध संस्थान, राष्ट्रीय पाण्डुलिपि मिशन आदि के प्रयास भी प्रंशसनीय है। हमारे पास सुरक्षा के सम्पूर्ण साधन होते हुए भी धूल के कण, ताप, दीमक, आर्द्रता, ग्रीष्म, शरद, प्रकाश, वायुमण्डलीय गैसें, कीटाणु, अग्नि, भूकम्प आदि पाण्डुलिपियों को हानि पहुँचाते हैं, विविध प्रकार की पाण्डुलिपियों का रख रखाव भी अलग अलग प्रकार से किया जा सकता है। डॉ. गौरीशंकर हीराचन्द्र ओझा के अनुसार दक्षिण की अधिक ऊष्ण वायु में ताडपत्र की पुस्तकें अधिक समय तक नहीं रह सकती, जितनी कि नेपाल आदि शीत देशों में रह सकती है। यही कारण है कि उत्तर में नेपाल में ताडपत्र पुस्तकें अच्छी स्थिति में प्राप्त होती है। यही स्थिति भोजपत्र पर लिखी पुस्तकों की है। भूर्जपत्र पर लिखी अधिकांश पाण्डुलिपियाँ कश्मीर में मिलती है।

ताडपत्र भूर्जपत्र आदि यदि कहीं स्तूप आदि में या पत्थरों के बीच बहुत भीतर दबा कर रखें जाएँ तो कुछ अधिक काल तक सुरक्षित रह सकते हैं। ऐसे खुले ग्रंथ चौथी, पाँचवीं शताब्दी से पूर्व के नहीं मिलते। डा. ओझा के

अनुसार भारतवर्ष की जलवायु में कागज बहुत अधिक काल तक नहीं रह सकता। ताड़पत्र, भूर्जपत्र या कागज आदि यदि बहुत नीचे या बहुत भीतर दबा कर रखे जाये तो दीर्घजीवी हो सकते हैं, किन्तु यह बात भी ध्यान देने योग्य है कि ऐसे दबे हुए ग्रंथ भी प्रथम द्वितीय ई. से पूर्व के नहीं मिलते। इसका एक कारण तो भारत पर विदेशी आक्रमण का चक्र हो सकता है। ऐसे कितने ही आक्रमणकारी भारत आये, जिन्होंने मन्दिरों, मठों, पुस्तकालयों, नगर-बाजारों को नष्ट और ध्वस्त कर दिया तथा उन्हें आग को समर्पित कर दिया। तक्षशिला में पुस्तकालय की अग्नि को कैसे भुलाया जा सकता है, जिसकी लपटें आज दिन तक हम अनुभव कर सकते हैं। जिन भारतीयों का पाण्डुलिपियों के प्रति अज्ञानतावश मोह नहीं था उन लोगो ने उन्हें अग्नि की गोद में डाल दिया, पानी में बहा दिया गया, कचरा समझ कर किसी गडढें में डाल कर कीटों की भोज्य सामग्री बना दिया ।

महत्वपूर्ण साहित्य-सम्पदा विदेशों में कोडियों के भाव बेच दी गयी। अपरोक्ष रूप से पुजारी भी शत्रु कहे जा सकते हैं क्योंकि यदि वे पढ़े लिखे नहीं हैं, तो वे यह भी जानते हैं कि मन्दिर में जो पुस्तकें पड़ी हैं वे किसी देवता से सम्बन्धित हैं। प्रमुख धार्मिक पुस्तक देवता कि आगे रख दी जाती है। जब मूर्ति का जलाभिषेक किया जाता है तो उसके छींटे पुस्तक पर भी पड़ जाते हैं और वह पुस्तक सीलन से भर जाती है तथा उससे दीमक लग जाती है और कीटाणु लगने से पुस्तक रुग्ण हो जाती है। मठाधीशों में भी लोभवश महत्वपूर्ण ग्रंथ रद्दी के भाव बेच दिये गए। अर्थ व साधनों के अभाव में निजी पुस्तकालयों में भी पुस्तकें सुरक्षित नहीं रह पाती।

जहाँ मन्दिर ट्रस्ट के अधीन है, वहाँ जब तक ट्रस्टी एक जगह एकत्र हो कर निर्णय नहीं करते तब तक वहाँ के ग्रन्थागार खुल नहीं पाते और बन्द पड़े रहने से उनकी सुरक्षा नहीं हो पाती। राजकीय उथल-पुथल, पाठक की लापरवाही, बाह्य वातावरण भी पाण्डुलिपियों के शत्रु रहे हैं। 'भारतीय जैन श्रमण संस्कृति एवं लेखन कला' के लेखक मुनि श्री पुण्यविजय जी ने पुस्तकों और ज्ञान भण्डारों के रक्षण की आवश्यकता निम्नलिखित चार कारणों से बतायी है:-

1. राजकीय उथल-पुथल
2. वाचक की असावधानी
3. मूषक, कसारी आदि जीव जन्तु के आक्रमण
4. बाहरी प्राकृतिक वातावरण

1. मुनि पुण्यविजय यह जानते हैं कि बड़े मन्दिरों में भूगर्भस्थ गुप्त स्थान बड़ी मूर्तियों को सुरक्षित रखने के लिए ही होते थे, लेकिन मन्दिरों में बने ये गुप्त स्थान राजनैतिक उथल-पुथल के समय न केवल मूर्ति आदि मन्दिर की

सम्पत्ति अपितु उनके ग्रंथ-भण्डारों को भी सुरक्षित करने में उपयोगी बने। कुछ ग्रन्थ भण्डारों के तहखानों में होने के प्रमाण कर्नल टाड द्वारा भी प्रस्तुत किये गये हैं।

2. वाचकों और पाठकों की असावधानी से बचने के लिए जो बातें की जाती थीं उनमें से एक तो यह है कि वाचकों के ऐसे संस्कार बनाये जाते थे, जिनसे वे पुस्तकों के साथ प्रमाद न कर सकें। इसी सांस्कृतिक शिक्षण की व्याप्ति भारत के घर-घर में देखी जा सकती है, यथाः जहाँ लिखने पढने की कोई वस्तु, पुस्तक, स्याही आदि जमीन पर कहीं गिर जाये या अशुद्ध स्थल पर गिर जाये, अशुद्ध हाथों से छू जाये तो उसे पश्चात्ताप के भाव से सिर से स्पर्श कर यथास्थान रखने की परम्परा आज भी प्राप्त होती है। पुस्तकों को पढने के लिए चौकी अथवा सम्पुटिका का उपयोग किया जाता था। इससे पुस्तक का जमीन से स्पर्श नहीं होता था।

3. मूषक, कसारी तथा अन्य जीव जन्तुओं से रक्षा के लिए मुनि पुण्यविजय के अनुसार प्राचीन जैन परम्परा में घोडाबद्ध या संस्कृत, उग्रगंधा पुस्तकों अथवा पाण्डुलिपियों को एक गठरी में बांध कर उसका इस प्रकार का नामकरण कर दिया जाता था। पुस्तकों के संग्रह को पेटियों में रख दिया जाता था। उनके संरक्षण हेतु कपूर का प्रयोग भी किया जाता था। यह विधान था कि पुस्तको को दोनों ओर से दावडों से दबा कर पुटठों गत्ता या आवरण पृष्ठ को पार्श्वों में रख कर पूर्ण कस कर बांध दें। फिर इन्हें बस्तों में बांध कर पेटी में रख दें।

4. धूप में ग्रंथ नही रखने चाहिए। यदि वर्षा की नमी हो तो भी गर्भस्थान पर धूप से बचाकर ग्रंथों को रखना चाहिए। नमी के कारण कई बार पृष्ठ चिपक जाते है। ऐसा स्याही बनाते समय गोंद के अधिक प्रयोग के कारण होता है। नमी से बचने के लिए एक उपाय तो यही बताया गया है कि पुस्तक को बहुत कस कर बांधना चाहिए, इससे कीडे मकोड़ों से ही रक्षा नही होगी अपितु वातावरण के प्रभाव से भी बच जाते है, पृष्ठों पर गुलाल छिडकने से ये आपस में चिपकते नही है। चिपके पन्ने अलग करने के लिए आवष्यक नमी युक्त हवा देने से, अथवा वर्षा की नमी का उपयोग करने से उन्हे आसानी से दूर किया जा सकता है। बाद में गुलाल छिडक देना चाहिए। ताडपत्र की पुस्तकों के चिपके पन्नों को अलग-अलग करने के लिए भीगे कपडे को पुस्तक के चारों ओर लपेटकर अपेक्षित नमी पहुचायी जाए और पन्ने जैसे-जैसे नम होते जायें, उन्हें अलग कर लेना चाहिए।

भारत में प्राचीन काल से ही ग्रन्थों की रक्षा के प्रति बहुत सचेष्ट दृष्टि थी। इसके लिए उपयुक्त स्थान के चुनाव, उनको आक्रमणकारी की दृष्टि से बचाने के उपाय, उनके रख-रखाव में अत्यन्त सावधानी तथा पूज्यभाव उत्पन्न करने के प्रयास किये जाते थे। ग्रंथों की सुरक्षा के लिए उन्हे थैलीनुमा बस्तों में रखा जाता था। महत्वपूर्ण कागज पत्रों को रखने के लिए भारत में भी लोहे या टीन के ढक्कन वाले खोखों का उपयोग कुछ समय पूर्व तक होता रहा है। आधुनिक

वैज्ञानिक युग में पाण्डुलिपियों की सुरक्षा के बहुत उपयोगी साधन उपलब्ध हुए हैं। इन साधनों के कारण हस्तलेखागारों की उपयोगिता का क्षेत्र भी बढ़ गया है। क्षेत्र को बढ़ाने वाले साधनों में दो प्रमुख है 1. माइक्रोफिल्म, 2. फोटोस्टेट

1. माइक्रोफिल्म के एक फीते पर कई हजार पृष्ट उतारे जा सकते हैं। इन फीतों को छोटे से डिब्बे में बन्द कर रखा जा सकता है। माइक्रोफिल्म की सुरक्षा की वैज्ञानिक विधियाँ भी होती हैं।

2. इसी प्रकार फोटोस्टेट यंत्र से ग्रन्थ की फोटो प्रतियाँ निकाली जा सकती हैं। ये ग्रंथ प्रतियाँ यथार्थ की भाँति ही उपयोगी मानी जा सकती हैं। ग्रंथों की रक्षा के लिए ग्रंथ के अन्त में प्रणेता अपील कर उल्लेख करता था कि मैंने यह पुस्तक बड़े कष्ट से लिखी है, इसे चोरो से बचाकर रखें। जितना प्रयत्न इन्हें सुरक्षित रखने में कर सकते हैं, करें। जल से इसकी रक्षा करें, भूमि पर न रखें, ग्रंथ को किसी बक्से में बांधकर रखें। बस्ते का बन्धन शिथिल न हो, अपितु दृढबन्धन हो। लिखते समय मेरी पीठ और गर्दन झुके रहें, दृष्टि भी झुकी हुई है और जब इतना कष्ट मैंने पाया है तो थोड़ा कष्ट इसकी सुरक्षा का आप भी कीजिए।

ग्रन्थों की रक्षा के लिए नगरों से दूर ग्रन्थागार बनाये जाते थे, ताकि विदेशी उन्हें नष्ट न कर सकें। ऐसे स्थानों पर ग्रंथ रखे जाए, जहाँ भूकम्प की सम्भावना कम हो। भोज्य सामग्री से उन्हें दूर रखना चाहिए।

ग्रंथ को बस्ते में बाँधने से पूर्व दोनों ओर रखा कागज लपेट कर कार्डबोर्ड लपेटना चाहिए। कपूर, मोरपंख, घोडावत्स नामक औषधि का टुकडा, सांप की कैचुली आदि का प्रयोग कीटाणुओं से रक्षा के लिए किया जाता था।

बाह्य वातावरण व कीट पतंगों से ग्रंथों की रक्षा के लिए कुछ उपाय आवश्यक है।

पाण्डुलिपि बचाव के उपाय- ग्रंथ भण्डारण भवन को 22 डिग्री से 25 डिग्री से. (72डिग्री से 78 डिग्री फा.) के बीच तापमान और नमी 5 और 55 प्रतिशत के बीच रखा जाए।

वातानुकूल यन्त्र द्वारा वातानुकूलित भवन में उक्त स्थिति रह सकती है, बहुत व्यय-साध्य होने से यदि यह सम्भव न हो, तो अत्यधिक नमी को नियन्त्रित करने के लिए जल-निष्कासन रासायनिकों का उपयोग कर सकते हैं। जैसेः- ऐल हाइडस, कैल्सियम क्लोराइड और सिलिका गेल 20-25 घन मीटर क्षमता के कक्ष के लिए 2-3 किलोग्राम सिलिका गेल पर्याप्त है। इसे कई तश्तरियों में भर कर कमरें में कई स्थानों पर रख देना चाहिए। 3-4 घंटे के बाद सिलिका गेल और नमी नहीं सोख सकेगा, क्योंकि वह स्वयं उस नमी से परिक्षरित हो चुका होगा, अतः सिलिका गेल की दूसरी मात्रा उन तश्तरियों में रखनी होगी। सिलिका गेल को गर्म करके दुबारा काम किया जा सकता है इसके साथ ही भण्डारण भवन बनाते समय सीलन का ध्यान रखना चाहिए और सीलनमुक्त विधि का प्रयोग करना चाहिए।

नमीऔर सीलन को कम करने में खुली स्वच्छ वायु का उपयोग भी लाभप्रद होता है, अतः भण्डारण में खिड़कियाँ आदि इस प्रकार बनायी जानी चाहिए, कि भण्डार की वस्तुओं को खुली हवा का स्पर्श लग सके। कभी-कभी बिजली के पंखों से भी हवा की जा सकती है।

भण्डारकक्ष की वस्तुओं पर सीधी धूप नहीं लगनी चाहिए। पाण्डुलिपियाँ रखने की आलमारियाँ खुली होनी चाहिए, जिससे उन्हें खुली हवा लगती रहे और सीलन न भरे। आलमारियाँ लोहे अथवा धातु की बनी हों, उन्हें दीवार से सटा कर न रखा जाय। दीवारों में बनायी सीमेन्ट की अलमारियाँ ठीक नहीं होती।

यदि भण्डारण कक्ष को उक्त मात्रा में तापमान और नमी का अनुकूलन सम्भव न हो, तो थाईमल रसायन से वाष्पचिकित्सा करनी चाहिए। इसके लिए वायुविरहित अलमारी या बॉक्स ले कर उसके नीचे के तल से 15 से.मी. की ऊँचाई पर तार के जालों का एक बस्ता लगायें, उस पर ग्रंथ को खोल कर रखें जिससे पीठ ऊपर रहे। थाइमल वाष्प् चिकित्सा के लिए जो ग्रंथ इस यंत्र में रखे जायें, उनमें अवयवाणुओं ने जहाँ घर बनाये हों, उन्हें साफ कर दें। सफाई कर फफूंदी आदि एक पात्र में इकटठी कर जला दी जाय। इसके बाद ग्रंथ को यंत्र पर रख 40-60 वाट के विद्युत लैंप की गर्मी से गर्म कर पाण्डुलिपियों को वाष्पित करें। एक क्यूबिक मीटर के लिए 100-150 ग्राम थाइमल ठीक रहता है। 6-10 दिन तक पाण्डुलिपियों को वाष्पित करना होगा और प्रतिदिन दो से चार घंटे विद्युत लैम्प जला कर वाष्पित करें। इससे ये सूक्ष्म अवयवाणु मर जाएँगे लेकिन उनके कारण पड़े धब्बे नही मिटेगे।

नमी को 75 प्रतिशत से कम करने का साधन न हो वहा मिथिलेटेड स्पिरिट में 10 प्रतिशत थाइमल का घोल बनाकर सांयकाल ग्रन्थागार में छिड़क कर खिड़की दरवाजे बंद कर दे। इससे फफूंद आदि पैदा करने वाले सूक्ष्म जीवाणु नष्ट हो जाएँगे।

पाण्डुलिपियों के शत्रु

भुकडी और फफूँद नामक दो शत्रु हैं जो पाण्डुलिपियों में ही पनपते है। फफूँद तो पुस्तकों में पनपने वाला वनस्पतीय फंगस होता है। जबकि भुकडी में शेष सभी अन्य सूक्ष्म अवयवाणु आते हैं, जो पाण्डुलिपियों में हो जाते हैं। 45 से. से अधिक तापमान में इनमें से बहुत सारे नष्ट हो जाते हैं। इन्हे रोकने के लिए ग्रन्थाकार का तापमान 22-24 से. तक रखा जाना चाहिए। साथ ही नमी 45-50 प्रतिशत के बीच रखनी चाहिए।

कई प्रकार के कीड़े मकोड़े भी पाण्डुलिपियों और ग्रंथों को हानि पहुँचाते हैं। ये दो प्रकार के मिलते हैंः एक प्रकार के कीट तो ग्रंथ के ऊपरी भाग को, जिल्द आदि को, जिल्दबन्दी के ताने-बाने को, चमडे को, पुटठे आदि को

हानि पहुँचाते हैं। इनमें एक तो कोक्रोच, दूसरे हैं रजत कीट (सिल्वर फिश) यह कीट बहुत छोटा, पतला चांदी की तरह चमकदार इनकी संख्या में वृद्धि न हो ऐसा प्रयत्न करना चाहिए। भण्डारगृह में खाने-पीने की वस्तुएँ नहीं आनी चाहिए। इनके आकर्षित होकर ये फलते - फूलते हैं। दीवारों की दरारों को भरवा देना चाहिए। इसके साथ ही नेप्थलीन की गोलियाँ अलमारियों में हर छः फीट पर रख दी जावे, इससे ये कीट भागते है। इन कीटों से पूर्ण मुक्ति के लिए डी.डी.टी. सोडियम फलोराइड आदि का छिड़काव करना चाहिए किन्तु सीधे छिड़काव करना अनुचित है।

ये कीट तो ऊपरी सतह को ही हानि पहुँचाते हैं, पर दो ऐसे कीट हैं, जो ग्रंथ के भीतरी भाग को भी नष्ट करते हैं। इनमें से एक है, पुस्तक कीट तथा दूसरा सोसिड है। ये दोनो कीट ग्रंथ के पन्नो को ऊपर से लेकर दूसरे छोर तक छेद कर देते है और गुफाएँ फोड़ देते है। लाखा जब उड़ने लगता है, तो दूसरे स्थानों पर पुस्तककीटों को जन्म देता है। सोसिड पुस्तक को भीतर ही भीतर नुकसान पहुँचाते हैं।

पुस्तकों को सबसे ज्यादा नुकसान दीमक से होता है। इसका घर भूगर्भ में होता है। वहाँ से चल कर ये मकानों में लकडी, कागज आदि पर आक्रमण करती हैं। यह अपना मार्ग दीवारों पर बनाती है, जो मिट्टी से ढकी छोटी-पतली सुरंगों के रूप में दिखायी पड़ता है, ये पुस्तकों को भीतर बाहर सब ओर से खाती है। इन्हें नष्ट करने की बजाय घर में प्रवेश के मार्ग को अवरुद्ध करना चाहिए। कोलतार, सफेद सांखिया, डी.डी.टी., सोडियम, आर्सोनिक का प्रयोग इससे बचाव करता है, इसके साथ ही भण्डारण के स्थान को धूल, मकड़ी के जालों एवं गन्दगी से रहित स्वच्छ रखना चाहिए।

पाण्डुलिपियों का चिकित्सा कार्य

पाण्डुलिपियों के रख-रखाव में न केवल शत्रुओं से रक्षा जरूरी है, अपितु पाण्डुलिपियों को ठीक रूप में और स्वच्छ दशा में रखना भी इसी का एक अङ्ग है। जब पाण्डुलिपियाँ कहीं से प्राप्त होती हैं तो उनमें से बहुतों की दशा विकृत होती है। पाण्डुलिपियों की ये विकृतियाँ कई प्रकार की होती हैं-

1. कटे-फटे स्थल या किनारें।
2. किनारे, गुडे-मुडे हुए कागज
3. सिकुडे सिलवट युक्त कागज
4. तड़कदार या कुरकुरे कागज
5. पानी से भीगे अथवा नमी युक्त पत्र
6. आपस में चिपके हुए पृष्ठ

7. धुँधले एवं अस्पष्ट लेख
8. जले हुए पृष्ठ
9. कागजों पर मुहरों की विकृतियाँ।

पाण्डुलिपियों में प्राप्त होने वाली इन विकृतियों के सुधार अथवा चिकित्सा का प्रयास करना चाहिए। चिकित्सा के लिए आवश्यक वस्तुओं का विवरण प्रस्तुत करते हुए डा. सत्येन्द्र ने 17 वस्तुओं का विवेचन किया है।

1. मेज जिस पर ऊपर शीषा जुडा हो।
2. छोटी प्रेस (दाब देने के लिए)
3. पेपर ट्रीमर
4. कैंची (बड़ी साइज)
5. चाकू
6. पारिंग चाकू
7. प्याले (पीतल या इनामिल किये हुए)
8. तश्तरिया (पीतल या इनामिल किये हुए)
9. ब्रश (ऊँट के बाल के 2.5-1.25
10. फुटा (स्कैल)
11. सुइया (बड़ी या छोटी)
12. पेपर कटिंग स्लाइस सींग के बने हो तो अच्छा है।
13. बोदकिन छेद करने के लिए
14. तख्त इनामिल किये हुए
15. शीषे की प्लेंटे
16. देगची लेई बनाने के लिए
17. बिजली की प्रेस ;प्तवदद्ध

चिकित्सा में अन्य अपेक्षित सामग्री

1. हाथ का बना कागज
2. ऊलि (टिशु पत्र)
3. शिफन नालिवसन
4. तैल कागजया मोनी कागज
5. मलमल
6. लंक लाट
7. सैल्यूलोज एसीटेट फायल

पृथ्वी एवं सूर्य में पौर्वापर्यविषयक सिद्धान्त

डॉ. रामदेव साहू
प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष
विश्वगुरुदीप आश्रम शोध संस्थान, जयपुर (राज.)

सृष्टिक्रम के सन्दर्भ में संशय व्यक्त करने वाले अनेक विद्वान् आज भी पृथ्वी एवं सूर्य के पौर्वापर्य के विषय में सन्देह प्रकट करते हैं। कुछ विद्वान् कहते हैं कि पहले सूर्य उत्पन्न होता है, उसके पश्चात् पृथ्वी उत्पन्न होती है। आधुनिक विद्वान् तो ऐसा भी कहते हैं कि सूर्य से ही टूट कर इस पृथ्वी ने अपना अस्तित्व बनाया है, अतः उनके मत में भी सूर्योत्पत्ति ही प्रथमतः हुई है, पृथ्वी की उत्पत्ति उसके अनन्तर हुई है, ऐसा स्पष्ट होता है। कुछ अन्य विद्वान् भूतसृष्टि (पंचमहाभूतों की रचना को आदित्य मान कर पिण्डसृष्टि) सजीव निर्जीव पदार्थो की संरचना को पश्चाद्वर्त्ती स्वीकार कर पंच महाभूतों की उत्पत्ति के पश्चात् ही सूर्य चन्द्र आदि ग्रहों नक्षत्रों एवं तारे इत्यादि आकाशीय पिण्डों की उत्पत्ति का प्रतिपादन करते हैं। उनका कहना है कि पृथिवी तत्त्व के बिना सूर्य के घटकभूत अन्य तत्वों का पिण्डीभाव (पदार्थत्व) सम्भव नहीं है, अतः पहले पृथ्वी महाभूत भी आकाशादि महाभूतों की उत्पत्ति के क्रम में उत्पन्न हुआ। नहीं तो द्यावापृथिवी रूप त्रैलोक्य की अण्डरूप में रचना कैसे सिद्ध होगी ? त्रैलोक्य का आधा अण्ड पहले उत्पन्न नहीं हो सकता और न ही आधा अण्ड बाद में उत्पन्न हुआ ऐसा कहा जा सकता है। इस प्रकार अनेकविध विप्रतिपत्तियाँ (शंकायें) दृष्टिगोचर होती हैं। इस विषय में समालोचना को आवश्यक समझ कर पंडित मधुसूदन ओझा ने अहोरात्रवाद में कतिपय सिद्धान्त प्रस्तुत किये हैं, जो अवश्य चिन्तनीय प्रतीत होते हैंः-

1. महर्षि याज्ञवल्क्य का सिद्धान्त

शतपथ ब्राह्मण में इस सिद्धान्त का उल्लेख हुआ है। इसके अनुसार पहले पृथ्वी ही उत्पन्न हुई, न कि सूर्य। यह उल्लेख निम्न प्रकार हैः-

''सर्वप्रथम एक मात्र यह प्रजापति ही विद्यमान था। उसने चिन्तन किया- कैसे प्रजा उत्पन्न हो, उसने

अत्यन्त परिश्रम किया। उसने तप किया। उसने अपने मुख से अग्नि को उत्पन्न किया। चूँकि वह अग्निमुख से उत्पन्न किया गया था, अतः वह अन्नाद कहलाया। उस प्रजापति ने पुनः चिन्तन किया । इस अन्नाद को मैंने उत्पन्न तो कर दिया किन्तु इसके लिए जो अन्न चाहिए, वह तो मेरे अतिरिक्त कोई है ही नहीं, जिसे यह अग्नि खा सके। तब एक तरल पदार्थ (लार) के रूप में पृथिवी उत्पन्न हुई। उस पर न औषधियाँ थी, न वनस्पतियाँ। वे सब उसके अन्तस् में विद्यमान थीं। इसको अग्नि ने अपने ऊपरी आवरण से ढक लिया। डरे हुए उस अग्नि की महिमा अपक्रान्त हुई। वाक् (वाणी या ध्वनि) ही इसकी महिमा थी, जो अपक्रान्त हुई थी। वह अग्नि स्वयं आहुति की इच्छा करने लगा। उसने जल को उत्पन्न किया। जल में उसने तर्क किया कि यह घृत की आहुति है या पय की आहुति है। दोनों मिला कर उसने पय ही कहा।

पृथ्वी ने इस अग्निजन्य पय का अभिराधन (आत्मसात्करण) नहीं किया। वह उलझे हुए बालों के गुच्छे के समान हो गयी। उस पय ने उसमें ओषधि की इच्छा की । तब ओषधियाँ उत्पन्न हुईं। उस अग्नि ने फिर दूसरी बार जल को उत्पन्न किया, जो अग्नि में दूसरी आहुति के रूप में जाना गया। पुनः शंका हुई कि इसे घृताहुति कहा जाए या पय-आहुति। पृथ्वी ने इसका भी अभिराधन नहीं किया। उस अग्नि ने इसका हवन किया (स्वयं भक्षण कर लिया)। उससे ही यह सूर्य उत्पन्न हुआ जो सदैव तप करता रहता है। उस सूर्य से ही यह अग्नि पुनः प्रकट हुआ। जो यह प्रज्ज्वलित होता है, वह अग्नि यही है। वह चारों ओर व्याप्त हो गया। प्रजापति ने इस अग्नि का ही हवन कर प्रजा को उत्पन्न किया। प्रजापति ने ही उस अग्नि का भक्षण किया और मृत्यु से अपने को बचाया।'' (श.ब्रा. 2/2/2)

उपर्युक्त सिद्धान्त से स्पष्ट होता है कि पहले पृथ्वी उत्पन्न हुई थी। फिर ओषधियाँ (वनस्पति) उत्पन्न हुई। ओषधियों से बल या ऊर्जा कैसे सम्भव हो, यह सोच कर उस अन्नाद अग्नि ने जैसे पहले अन्न उत्पन्न किया था वैसे ही बाद में उसकी रक्षा के लिए सूर्य को उत्पन्न किया।

2. बृहस्पति का सिद्धान्त

तैत्तिरीय आदि वैदिक संहिताओं में बार्हस्पत्य सिद्धान्त का उल्लेख कहीं कहीं उपलब्ध होता है। इसके अनुसार पहले पृथ्वी आग्नेयी (अग्निमयी) ही थी। उस समय सूर्य नहीं था। यह पृथ्वी ही अग्निमयी रश्मियों का निस्सारण कर रही थी। उन अग्निमयी रश्मियों के प्रभाव से अदितिपुत्र आदित्यों का संघात (एकत्र अवस्थान या एक पिण्डीभाव) सम्पन्न हुआ। यही कारण है कि तैत्तिरीय शाखा का अध्ययन करने वाले पृथ्वी के समान रात्रि को आग्नेयी तथा अहः को ऐन्द्र स्वीकार करते हैं।

अदिति प्रकृति ही थी, इस विषय में किसी का भी विरोध नहीं है। प्रकृति का अस्तित्व पृथ्वी के बिना सम्भव नहीं है-यह वैज्ञानिक सत्य है। अतः स्पष्ट है कि अदितिरूपा प्रकृति पृथ्वी के साहचर्य से सर्वप्रथम उत्पन्न हुई। उस अदितिरूपा प्रकृति से जो द्वादश आदित्य उत्पन्न हुए, वे पृथ्वी के अन्तस् में विद्यमान अग्नि के ही बारह रश्मिपुंज थे। उनका संघात (सामूहिक पिण्ड) ही सूर्य के रूप में आविर्भूत हो सका।

अतएव पं. मधुसूदन ओझा महोदय लिखते हैंः-

'बृहस्पति के मत में अदिति से पूर्व पृथ्वी विद्यमान थी तथा उसके बाद ही द्यौः उत्पन्न हुआ था। (अहोरात्रवाद-5/10)

अर्थात् पहले समस्त त्रैलोक्य पृथ्वीमय ही था। जब सूर्य प्रकट हुआ, तब त्रैलोक्य का ऊपरी भाग द्यौसंज्ञा को प्राप्त कर सका।

3. महर्षि भरद्वाज का सिद्धान्त

महर्षि भरद्वाज का सिद्धान्त भी वैदिक संहिता ग्रन्थों में ही उल्लिखित है। ऋग्वेद संहिता के छठे मण्डल एवं दसवें मण्डल में भी इसके संकेत उपलब्ध होते हैं। इसके अनुसार पुत्र बाद में उत्पन्न होता है, माता-पिता उससे पहले अवश्य ही विद्यमान होते हैं। सूर्य के माता-पिता अदिति एवं अग्नि है। अदिति एवं अग्नि इन दोनों का आश्रय पृथ्वी ही था। क्योंकि पृथ्वी के बिना न अदिति हो सकती है और न ही अग्नि। और भी, द्यावापृथिवी के अस्तित्व के बिना वैश्वानर अग्नि भी सम्भव नहीं होती। जैसा कि कहा भी हैः-

'अहः का जो कृष्ण भाग है, वही उर्वी (पृथ्वी) है तथा जो अर्जुन (शुक्ल) भाग है वही सूर्य है। ये दोनों ही अपने अपने रजःकणों से द्युलोक एवं पृथ्वीलोक का रूप धारण करते हैं। इनसे जब रजःकण विवर्त्त को प्राप्त करते हैं तो उसके परिणामस्वरूप वैश्वानर अग्नि उत्पन्न होता है, जो अन्धकार को दूर करता है। (अहोरात्रवाद-2/54)

यह वैश्वानर अग्नि जो द्यावापृथिवी से उत्पन्न होता है, वही सूर्य का वास्तविक उत्पादयिता है। वैश्वानर अग्नि के अस्तित्व के बिना सूर्य अन्धकार को नष्ट नहीं कर सकता। ओझा महोदय ने इस मत का उल्लेख इस प्रकार किया है-

'पुत्र बाद में जन्म लेने वाला होता है, जबकि पिता को पहले जन्म लेने वाला माना गया है, ऐसा भरद्वाज का अनुवचन है। वह सूर्य भी जो अग्नि का पुत्र कहा जाता है, वैश्वानर अग्नि के तुल्य ही रश्मिप्रसार वाला माना गया है।

(अहोरात्रवाद-2/55)

उपर्युक्त उल्लेख से ज्ञात होता है कि वैश्वानर अग्नि का पुत्र ही केतु कहलाता है तथा सर्वप्रथम केतु ही उत्पन्न होता है, फिर वह इन्द्र आदि द्वादश आदित्यों का सम्पर्क प्राप्त कर स्वयं ही सूर्य के रूप में अपने को परिणत कर लेता है। इस प्रकार सूर्य की उत्पत्ति पृथ्वी की अपेक्षा परवर्ती ही सिद्ध होती है।

4. विश्वकर्मा द्वरा प्रतिपादित सिद्धान्त

विश्वकर्मा द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्त के उल्लेख तैत्तिरीय संहिता, तैत्तिरीय ब्राह्मण, तैत्तिरीय आरण्यक एवं ताण्ड्य महाब्राह्मण में उपलब्ध होते हैं। इसके अनुसार विश्वकर्मा यह प्रतिपादित करते हैं, कि जैसे शिशु की उत्पत्ति के समय सिर एवं पैर गर्भ से ही युगपत् विद्यमान होते हैं, वैसे ही त्रैलोक्य के तीनों लोक भी युगपत् ही उत्पन्न होते हैं। द्युलोक, अन्तरिक्ष लोक एवं पृथ्वी लोक की उत्पत्ति में आनुक्रमिकता नहीं है, अतः इनमें पौर्वापर्य की कल्पना तो की ही नहीं जा सकती। इस आधार पर यही कहा जा सकता है कि द्यावापृथिवी एक साथ उत्पन्न हुए है। जैसा कि कहा भी है-

''द्यावापृथिवी एक साथ ही विद्यमान थे। वे वियत् (शून्य में विद्यमान) अनियन्त्रित स्थिति वाले बोले- हम साथ साथ यज्ञोपयोगी बनें। तब इस द्यावा पृथिवी का जो यज्ञिय अंश था, वह उसमें सन्निहित हो गया। वही इस चन्द्रमा में कृष्ण रूप से विद्यमान है। (तै.सं.5/23,तै.प्रा.1/1/3, ताण्डय. 7/10)

उपर्युक्त श्रुति से पृथ्वी एवं चन्द्रमा में सजातीयत्व प्रमाणित होता है, न कि पृथ्वी एवं सूर्य का सजातीयत्व सिद्ध होता है। और भी, अन्यत्र चन्द्र के अन्तरिक्षवर्ती सुने जाने से इस विषय में पृथ्वी एवं सूर्य का वियत् (अन्तरिक्ष या आकाश) में ही वियत्त्व (अन्तरिक्षवर्त्तित्व) उपगत होता है। या फिर ऐसा भी हो सकता है कि सृष्टि के आदि में चन्द्रमा एवं पृथिवी की युगपद् विद्यमानता रही हो।

इस विषय में कुछ विद्वान् यह भी कहते हैं, कि चन्द्रमा सोम के प्राधान्य के कारण अन्नमय है तथा सूर्य अग्नि के प्राधान्य के कारण अन्नाद रूप है। और, जैसे लोक में अन्नाद प्राणियों की उत्पत्ति से पूर्व अन्न उत्पन्न होता है, वैसे ही सूर्योत्पत्ति से पूर्व चन्द्रोत्पत्ति का भी औचित्य लक्षित होता है। ऐसा मानने पर चन्द्रमा एवं पृथिवी की युगपत् स्थिति को स्वीकार करने में भी दोष नहीं मानना चाहिए।

(शेष अगले अंक में)

राष्ट्रोपनिषत्-प्रस्तावना-शतकम्

रचयिता
आचार्य डॉ. नारायणशास्त्री काङ्कर विद्यालङ्कार
(महामहिम-राष्ट्रपति-सम्मानित)

हिन्दी-रूपान्तरण-कर्त्री
सौ. श्रीमती इन्दु शर्मा
एम.ए., शिक्षाचार्या

अंग्रेजी-रूपान्तरण-कर्त्ता
महामण्डलेश्वर स्वामी श्री ज्ञानेश्वरपुरी
विश्वगुरुदीप आश्रम शोध संस्थान, जयपुर

(गताङ्कादग्रे) **इहेदमेव प्रमाणं, यदीदृश - घोरापराधे दण्डितो हि।**
न कदापि क्वचिदपि च स, दृष्टः श्रुतः पठितो वा प्रशासनेन ॥57॥

इसमें यही प्रत्यक्ष प्रमाण है, कि ऐसे घोर अपराध में प्रशासन के द्वारा दण्डित किया गया वह कहीं भी कभी न देखा गया है, न सुना गया अथवा पढ़ा ही गया है।

The proof of this statement is that it was never heard or written anywhere about administration punishing such a person.

ईदृशापराधेषु तु, प्राप्ताद्यतन - शिक्षा एव लिप्ताः।
अधिकतरमीक्ष्यन्तेऽत्र, प्रमाणं च वृत्तवार्त्ता-पत्राणि ॥58॥

ऐसे अपराधों में तो आजकल की शिक्षा प्राप्त किए हुए ही व्यक्ति लिप्त अधिकतर यहाँ देखे जाते हैं। इसमें समाचार - पत्र प्रमाण हैं।

Today educated people are completely immersed in such crimes, as witnessed by the news.

सत्संस्काराँस्तु नैव, जनयितुं प्रभविष्णुरद्यतन - शिक्षाऽस्ति।
अतो हि नानोत्पाता, उत्पद्य जनतां प्रशासनं च तुदन्ति ॥59॥

आजकल की शिक्षा उत्तम संस्कारों को उत्पन्न करने में समर्थ नहीं है। इसीलिए नाना उत्पात उत्पन्न होकर जनता और प्रशासन को उत्पीड़ित करते रहते हैं।

Today's education is not capable of giving the highest values (in life). Therefore, various disasters are created that are troubling people and the administration.

नेयं काचन नवता, यादृशमुप्यते बीजं तादृशमेव ।
प्राप्यतेऽत्रावश्यं हि, फलमिति प्राकृतिकोऽयं सुदृढो नियमः ॥60॥

यह कोई नई बात नहीं है, जैसा बीज बोया जाता है वैसा ही फल अवश्य ही यहाँ प्राप्त किया जाता है । यह तो प्रकृति का सुदृढ नियम है।

This is nothing new. As we saw we reap, is a natural order of things. |60| (or should we put longer version – As the seeds, we plant such will be the fruits. That is a strong principle of nature.)

गुरुदेव ! कां वदाम, विकृतिमापन्नां स्वराष्ट्रियां दशाम् ?।
दर्शं दर्शमेतां तु, दोदूयत एव हृदयमस्माकम् ॥61॥

हे गुरुदेव ! विकार को प्राप्त हुए हमारे राष्ट्र की दशा को क्या बताएँ ? इसको देख देख कर तो हमारा हृदय बहुत बहुत ही सन्तप्त होता है।

Oh, Gurudev! What will be with our nation? Our hears suffer a lot, seeing these disorders.

यत्रेक्ष्येत तत्रैव, सुखं शान्तिः समृद्धिर्न लभ्यते ।
तदाप्त्यै कृत-यत्नास्तु, सफलाः स्थिर-रूपेण भवन्त्येव न ॥62॥

जहाँ देखा जाए वहाँ ही सुख शान्ति समृद्धि नहीं प्राप्त की जाती है । उनकी प्राप्ति के लिए किये गये प्रयत्न तो स्थिर रूप से सफल होते ही नहीं हैं।

Wherever we look at happiness, peace and wealth cannot be achieved. All efforts to achieve them are wasted.

सर्वेऽपीह स्वार्थान्, साधयितुं संलग्ना अवलोक्यन्ते ।
मिथ उपविश्य वार्त्तां तु कर्त्तुं सप्रेम कश्चिद् चिन्तयत्येव न ॥63॥

यहाँ सभी स्वार्थों को साधने में संलग्न देखे जाते हैं। अपस में बैठकर प्रेम के साथ बात करने की तो कोई सोचता ही नहीं है।

Here all are engaged in selfish deeds/work. Engrossed/immersed in crime, nobody even thinks to talk with love.

(क्रमशः)

ISSN : 2582-6360

विश्वशांति संसद्-2021 : दृश्यांकन

प्रकाशक : विश्वगुरुदीप आश्रम शोध संस्थान - कीर्ति नगर, श्याम नगर, सोढाला, जयपुर

Website : vgda.in **Youtube :** www.youtube.com/c/vishwagurudeepashram **E-mail :** jaipur@yogaindailylife.org